जैन तत्त्व संग्रह

[प्रथम भाग]

प्रकाशक

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

कलकत्ता ।

आत्म-निवेदन

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा शिक्षा विभाग द्वारा जैन सिद्धान्त प्रवेशिका प्रथम वर्ष, द्वितीय वर्ष, जैन सिद्धान्त विशारद प्रथम वर्ष, द्वितीय वर्ष, जैन सिद्धान्त रत्न प्रथम वर्ष, द्वितीय वर्ष की परीक्षाएं अखिल भारतीय स्तर पर संचालित हैं। ये परीक्षाएँ समस्त क्षेत्रों में तत्त्वज्ञान प्रशिक्षण सम्बन्धी अभिरुचि बढ़ाने में सफल माध्यम प्रमाणित हुई हैं।

प्रस्तुत पुस्तक जैन सिद्धान्त प्रवेशिका प्रथम वर्ष परीक्षा के लिये निर्द्धारित है। इस पुस्तक में केवल ३२ पाठ हैं जो सरल व सुबोध हैं तथा छात्र छात्राओं को बरबस अध्ययन की ओर आकर्षित करते हैं।

परम वन्दनीय आचार्य प्रवर श्री तुलसीगणि, विद्वद्वर मुनि श्री नथमलजी, मुनि श्री नवरत्नमलजी द्वारा रचित ये छात्रोपयोगी रचनाएँ छात्र छात्राओं का मौलिक ज्ञान तो बढ़ाती ही हैं साथ ही उन्हें चारित्रिक विकास की प्रेरणा भी प्रदान करती हैं।

राष्ट्र में आध्यात्मिक शिक्षा के प्रचार व प्रसार की महती आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक तत्वज्ञानानुरागी बन्धु-बहिनों के प्रारम्भिक प्रयास में एक योग्य सम्बल बनेगी, ऐसी आशा है।

केवलचन्द नाहटा
संयोजक
[महासभा शिक्षा विभाग]

आषाढ़ वदी १,
सम्वत् २०१८

विषयानुक्रम

पृष्ठ

द्वितीय खण्ड

प्रथम खण्ड (कण्ठस्थ)

: १ :

प्रार्थना

हे दयालो ! देव ! तेरी शरण हम सब आ रहे,
शुद्ध मनसे एक तेरा ध्यान हम सब ध्या रहे।
मोह मद ममता के त्यागी वीतरागी तुम प्रभो।
हम भी उस पथके पथिक हों भावना यह भा रहे।
हे दयालो ! देव० ॥१॥
सद्गुरु में हो हमारी भक्ति सच्चे भाव से,
धर्म रग रग में रमे हरदम यही हम चाह रहे।
दिल से पापों के प्रति प्रतिपल हमारे हो घृणा,
प्रेम हो सत्सग से यह लालसा दिल ला रहे।
हे दयालो ! देव० ॥२॥

दूसरों की देख बढ़ती हो न ईर्ष्या-लेश भी,
सर्वदा ग्राहक गुणों के हों हृदय से गा रहे।
त्यागमय जीवन बितायें शान्तिमय बर्ताव हो,
भाव हो समभाव तेरा पथ जो हम पा रहे।
हे दयालो ! देव० ॥३॥

प्रश्न

१—इस प्रार्थना में क्या-क्या बातें चाही गई है ?
२—वीतरागी से तुम क्या समझते हो ?
३—'त्यागमय जीवन बितायें' का भावार्थ समझाओ।
४—निम्न शब्दों के अर्थ बताओ —
ध्या, ममता, वीतरागी, लालसा।

• २ •

नमस्कार-महामन्त्र

णमो अरिहन्ताण—मैं अरिहन्त भगवान् को नमस्कार करता हूँ।

णमो सिद्धाण—मैं सिद्ध भगवान् को नमस्कार करता हूँ।

णमो आयरियाण—मैं धर्माचार्य को नमस्कार करता हू।

णमो उवज्झायाण—मैं उपाध्याय को नमस्कार करता हूँ।

णमो लोए सव्वसाहूण—मैं लोक के सब साधुओं को नमस्कार करता हूँ।

मन्त्र-महत्व

एसो पचणमुक्कारो, सव्व पावपणासणो।
मगलाण च सव्वेसि, पढम हवइ मगल॥

अर्थ—यह नमस्कार महामन्त्र सब पापोंका नाश करनेवाला और सब मङ्गलों मे पहला मङ्गल है।

नमस्कार महामन्त्र के पांच पद हैं और सब अक्षर ३५ हैं। पहले पदमें सात, दूसरे पदमें पांच, तीसरे पदमें सात, चौथे पदमे सात और पांचवे पदमें नौ अक्षर हैं। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और लोक के सब साधु—ये पांचों पञ्च-परमेष्ठी कहलाते हैं।

प्रश्न

१—नमस्कार महामन्त्र का स्मरण हम किसलिए करते हैं ?
२—नमस्कार महामन्त्र के पद कितने है ?
३—नमस्कार महामन्त्र के अक्षर कितने हैं ?
४—इसमें किस किस को नमस्कार किया गया है ?
५—सबसे श्रेष्ठ मगल क्या है ?
६—नमस्कार महामन्त्र मे महत्त्व का कौन सा पाठ है ?
७—निम्न शब्दों के अर्थ बताओ —

अरिहन्त, उपाध्याय, महामन्त्र, पञ्च-परमेष्ठी।

: ४ ·

चत्तारि मंगल की पाटी अर्थ सहित

चत्तारि मगल	अरिहन्त मगल	सिद्धा मगल
मगल चार हैं	अरिहन्त मगल हैं	सिद्ध मगल हैं
साहू मगल	केवलि पन्नतो	धम्मो मगल
साधू मगल हैं	केवली-प्ररूपित	धर्म मगल है

चत्तारि लोगुत्तमा — अरिहन्ता लोगुत्तमा

चार लोकमे उत्तम है — अरिहन्त लोकमें उत्तम है

सिद्धा लोगुत्तमा — साहू लोगुत्तमा — केवलि पन्नतो

सिद्ध लोकमें उत्तम है — साधू लोक मे उत्तम है — केवली प्ररूपित

धम्मो लोगुत्तमो — चत्तारि सरण पवज्जामि

धर्म लोक मे उत्तम है — चार शरणको स्वीकार करता हूँ

अरिहन्ते सरण पवज्जामि

अरिहन्तों की शरण को स्वीकार करता हू

प्रथम भाग

सिद्धे सरणं पवज्जामि

सिद्धों की शरण को स्वीकार करता हूँ

साहू सरणं पवज्जामि

साधुओं की शरण को स्वीकार करता हूँ

केवलि पन्नत्त

केवली प्ररूपित

धम्मं सरणं पवज्जामि

धर्म की शरण को स्वीकार करता हूँ

प्रश्न

१—चार मंगल कौन से हैं ?
२—चारों मंगलों को मांगलिक क्यों माना गया है ?
३—'केवलि पन्नत्तो धम्मो मंगलं' का क्या अर्थ है ?
४—लोगुत्तमा से तुम क्या समझते हो ?
५—शरण किसकी लेनी चाहिये ?

: ५ ·

सामायिक लेने की पाटी अर्थ सहित

करेमि भन्ते ! समाइय । सावज्ज जोग
करता हू भगवन् । सामायिक । सावद्य योगका
पच्चक्खामि जावनियम
प्रत्याख्यान करता हूं । सामायिकका जितना काल है
(मुहूत्तएग) पज्जुवासामि दुविह तिविहेण
(एक मुहूर्त तक) पालन करता हू दो करण तीन योगसे
न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा
न करूगा, न कराऊगा, मन से, वचन से
कायसो तस्स भन्ते पडिक्कमामि
शरीरसे, उन पूर्वकृत सावद्य योगसे, भगवन् ! निवृत होता हू,
निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि
निन्दा करता हूं, गर्हा करता हू, आत्माको पापसे दूर करता हूं

प्रश्न

१—सामायिक के पाठ का शुद्ध उच्चारण करो ?
२—सामायिक मे किस बात का त्याग किया जाता है ?
३—सामायिक कितने करण योग से की जाती है ?
४—सामायिक का काल मान कितना है ?
५—सावद्य का अर्थ क्या है ?
६— 'निंदामि गरिहामि' का क्या अर्थ होता है ?

६

सामायिक पारण विधि

नवमां सामायिक व्रत के विषै जो कोई अतिचार दोष लगा हो तो आलोचना करता हूँ।

१—मन योग सावद्य प्रवर्त्या हो।

२—वचन योग सावद्य प्रवर्त्या हो।

३—काय योग सावद्य प्रवर्त्या हो।

४—सामायिक की सार सभाल न करी हो।

५—अण पूरी सामायिक पारी हो।

सामायिक मे स्त्री कथा, भक्त कथा, देश कथा, राज कथा करी हो—तस्स मिच्छामि दुक्कड।

प्रश्न

१—सामायिक के कितने अतिचार हैं ?

२—अतिचार शब्द से क्या समझते हो ?

३—मन की सावद्य प्रवृति कैसे होती है ?

४—सामायिक की सार सभाल करने का क्या अर्थ है ?

५—भक्त कथा किसे कहते है ?

६—इन शब्दों का अर्थ बताओ —

सावद्य, काय, सामायिक, मिच्छामि।

: ७ :

चौवीस तीर्थंकर

तीर्थका अर्थ है—आगम एव साधु-साध्वी तथा श्रावक और श्राविका। इस चतुर्विध तीर्थकी स्थापना करनेवाले तीर्थङ्कर कहलाते हैं। ये इस युगमे चौवीस हुए है, इनके नाम क्रमश इस प्रकार हैं —

१—भगवान् ऋषभ प्रभु (वृषभ प्रभु आदि देव)
२—भगवान् अजित प्रभु
३—भगवान् सम्भव प्रभु
४—भगवान् अभिनन्दन प्रभु
५—भगवान् सुमित प्रभु
६—भगवान् पद्म प्रभु
७—भगवान् सुपार्श्व प्रभु
८—भगवान् चन्द्र प्रभु
९—भगवान् सुविधि प्रभु (पुष्पदन्त)
१०—भगवान् शीतल प्रभु
११—भगवान् श्रेयांस (श्रेयान् प्रभु)
१२—भगवान् वासुपूज्य

१३—भगवान् विमल प्रभु
१४—भगवान् अनन्त प्रभु (अनन्तजित)
१५—भगवान् धर्म प्रभु
१६—भगवान् शांति प्रभु
१७—भगवान् कुन्थु प्रभु
१८—भगवान् अर प्रभु
१९—भगवान् मल्लि प्रभु
२०—भगवान् सुव्रत (मुनि सुव्रत प्रभु)
२१—भगवान् नमि प्रभु
२२—भगवान् अरिष्टनेमि (नेमि प्रभु)
२३—भगवान् पार्श्व प्रभु
२४—भगवान् महावीर (वर्धमान, वीर, देवार्थ, अन्तिम तीर्थङ्कर, ज्ञातपुत्र)

प्रश्न

१—इस युगमें कितने तीर्थङ्कर हुए ?
२—तीसरे, तेरहवें और बीसवें तीर्थङ्करों के नाम बताओ।
३—वासुपूज्य भगवान् कौन से तीर्थङ्कर थे ?
४—अकार आदि वाले नाम के तीर्थङ्करों के नाम बताओ।
५—पहले तथा अन्तिम जिन कौन से थे ?

८

तेरापंथ के नौ आचार्य

तेरापथ का उद्भव विक्रम सवत्-१८१७ में हुआ। आजतक तेरापथ के नौ आचार्य हुए हैं, इनके नाम क्रमश इस प्रकार हैं -

	नाम	जन्म	निर्वाण
(१)	आचार्य श्री भिक्षुगणी	आषाढ शुक्ला १३, १७८३	भाद्र शुक्ला १३, १८६०
(२)	,, ,, भारमलजी	१८०३	माघ कृष्णा ८, १८७८
(३)	,, ,, रायचन्दजी	चैत्र कृष्णा १२, १८४७	माघ कृष्णा १४, १९०८
(४)	,, ,, जीतमलजी (जयगणी)	आश्विन शुक्ला १४, १८६०	भाद्र कृष्णा १२, १९३८

प्रथम भाग

नाम	जन्म	निर्वाण
(५) आचार्य श्री मघराजजी (मघवागणी)	चैत्र शुक्ला ११, १८९७	चैत्र कृष्णा ५, १९४९
(६) ,, ,, माणकलालजी (माणकगणी)	भाद्र कृष्णा ४, १९१२	कार्तिक कृष्णा ३, १९५४
(७) ,, ,, डालचन्दजी (डालगणी)	आषाढ़ शुक्ला ४, १९०९	भाद्र शुक्ला १२, १९६६
(८) ,, ,, कालुरामजी (कालुगणी)	फाल्गुन शुक्ला २, १९३३	भाद्र(पहला)शुक्ला ६, १९९३
(९) ,, ,, तुलसीरामजी (तुलसीगणी)	कार्तिक शुक्ला २, १९७१	वर्तमान

प्रश्न

१—पहले तथा चौथे आचार्य के नाम बताओ।
२—वर्तमान आचार्य श्री का नाम बताओ।
३—मकार आदि वाले कौन से आचार्य हुए हैं ?
४—चतुर्थ आचार्य का जन्म कब हुआ था ?
५—डालगणी का स्वर्गवास किस संवत् में हुआ ?

६ .

पंचपद वन्दना

पहिले पदे श्री सीमधर स्वामीजी आदि जघन्य बीस तीर्थङ्कर देवाधिदेव उत्कृष्ट एक सौ साठ तीर्थंकर देवाधिदेव पच महाविदेह क्षेत्रमें विचरते हैं—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त बल, अशोक वृक्ष, पुष्प वृष्टि, दिव्य ध्वनि, देव-दुन्दुभी, स्फटिक सिंहासन, भामण्डल, छत्र, चामर इन द्वादश गुणों के धारक, एक हजार आठ शुभ लक्षण युक्त शरीर, चौसठ इन्द्रों के पूजनीय, चोतीस अतिशय, पैंतीस वचनातिशय से सुशोभित इस प्रकार के श्री अरिहंत देवों के प्रति हाथ जोड़, मान मोड़ "तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेमि वदामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासामि मत्थएण वदामि ।"

❀ ❀ ❀

दूसरे पदे अनन्त सिद्ध पन्द्रह प्रकार से अनन्त चौबीसी अष्ट कर्मों को क्षय करके मोक्ष पहुँचे—केवल ज्ञान, केवल दर्शन,

आत्मिक सुख, क्षायक सम्यक्त्व, अटल अवगाहना, अमूर्तित्व, अगुरु लघुत्व, अन्तराय रहित ये अष्टगुण सयुक्त, जन्म मरण जरा रोग शोक दु ख दारिद्र्य-रहित सर्वदा शाश्वत सुख पूर्वक विराजमान है—ऐसे श्री सिद्ध भगवान् के प्रति हाथ जोड मान मोड 'तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेमि वदामि नमसामि सकारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासामि मत्थएण वदामि ।"

❀ ❀ ❀

तीसरे पदे मेरे धर्माचाय गुरु पूज्य महाराजधिराज श्री १००८ श्री श्री तुलसीरामजी स्वामी आदि—वे आचार्य भगवान् कैसे है। पञ्च महाव्रत के पालनेवाले, चार कषाय के टालनेवाले पञ्च आचारके पालनेवाले, पञ्च समिति और तीन गुप्तिसे युक्त, पाच इन्द्रियोंको जीतनेवाले, नौ वाड सहित ब्रह्मचर्य व्रत को पालनेवाले तथा छत्तीस गुणों के धारक, शासन शृङ्गार, गच्छाधार, धर्मधुरन्धर, सयल शुभङ्कर, भुवन-भास्कर, मिथ्यात्वनाशक, तीर्थङ्कर देववत् धर्मोद्योतकारी—ऐसे महापुरुष आचार्य श्री के प्रति हाथ जोड मान मोड "तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेमि वन्दामि नमसामि सकारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मङ्गल देवय चेइय पज्जुवासामि मत्थएण वदामि ।"

❀ ❀ ❀

चौथे पदे उपाध्यायजी महाराज वे कैसे है—ग्यारह अङ्ग

और बारह उपाङ्गों का स्वयं अध्ययन करते और दूसरों को अध्ययन करवाते हैं—ऐसे पच्चीस गुणों के धारक श्री उपाध्याय जी महाराजके प्रति हाथ जोड़ मान मोड़ "तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि।"

❀ ❀ ❀

पाँचवें पदे जघन्य (कम से कम) दो हजार करोडसे अधिक साधु-साध्वी, उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) नौ हजार करोड साधु-साध्वी ढाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्रोंमें विहार करते हैं, वे महा मुनिराज कैसे हैं—पञ्च महाव्रत के पालनहार, पांच इन्द्रियोंके जीतनहार चार कषायके टालनहार, भाव सत्य, करण सत्य, योग सत्य, क्षमावन्त, वैराग्यवन्त, मन समाधारणता, वचन-समाधारणता, काय-समाधारणता, ज्ञान-सम्पन्न, दर्शन-सम्पन्न, चारित्र सम्पन्न, वेदना (कष्ट) आने से उसे समभाव पूर्वक सहन करनेवाले, मृत्युको समभावपूर्वक सहन करनेवाले, इन सत्ताईस गुणोंके धारक, बाईस परीषहोंको जीतनेवाले, बयालीस दोष टालकर आहार-पानी लेनेवाले, बावन अना चारोंको टालनेवाले, निर्लोभी, निलालची, संसार से उदासी मोक्षके अभिलाषी, संसारसे विमुख, मोक्षके सम्मुख, सचित्तके त्यागी, अचित्तके भोगी, न्यौता देनेसे भोजन नहीं करनेवाले, बुलानेसे नहीं आनेवाले वायुवत् अप्रतिबन्ध विहारी—इस प्रकारके महा उत्तम मुनिराजोंके प्रति हाथ जोड़ मान मोड़

प्रथम भाग

"तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेमि वंदामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगल देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि।"

प्रश्न

(१) सिद्ध बड़े या अरिहन्त ?
(२) पांच आचार कौन से है ?
(३) तीर्थङ्कर देववत् धर्मोद्योतकारी का क्या मतलब समझे ?
(४) वर्तमान में उपाध्याय कौन हैं ?
(५) पन्द्रह क्षेत्र कौन से हैं ?
(६) अप्रतिबंध किसे कहते हैं ?
(७) मन समाधारणता किसे कहते हैं ?
(८) इन शब्दों के अर्थ बताओ —
अतिशय, अटल अवगाहना, सकल शुभङ्कर, करण सत्य, भुवन भास्कर।

· १० ·

पच्चीस बोल

(एक स तेरह तक)

१—पहले बोले गति चार—

(१) नरक गति (२) तिर्यञ्च गति (३)मनुष्य गति (४) देव गति

२—दूजे बोले जाति पांच—

(१) एकेन्द्रिय (२) द्वीन्द्रिय (३) त्रीन्द्रिय (४) चतुरिन्द्रिय (५) पञ्चेन्द्रिय

३—तीजे बोले काया छह—

(१) पृथ्वीकाय (२) अप्काय (३) तेजस्काय
(४) वायुकाय (५) वनस्पतिकाय (६) त्रसकाय।

४—चौथे बोले इन्द्रिय पाच—

(१) श्रोत्रेन्द्रिय (२) चक्षुरिन्द्रिय (३) घ्राणेन्द्रिय
(४) रसनेन्द्रिय (५) स्पर्शनेन्द्रिय।

। (३) मिश्र गुणस्थान (४) अविरति सम्यग्दृष्टि
। (५) देशविरति गुणस्थान (६) प्रमत्त संयत गुण-
७) अप्रमत्त संयत गुणस्थान (८) निवृत्ति बादर
। (९) अनिवृत्ति बादर गुणस्थान (१०) सूक्ष्म
गुणस्थान (११) उपशांतमोह गुणस्थान
गमोह गुणस्थान (१३) सयोगी केवली गुणस्थान
ोगी केवली गुणस्थान।

बोले पांच इन्द्रियोंके तेईस विषय—

्रय के तीन विषय—(१) जीव शब्द (२) अजीव
शब्द (३) मिश्र शब्द।

न्द्रियके पांच विषय—(४) कृष्ण वर्ण (५) नील वर्ण
(६) रक्त वर्ण (७) पीत वर्ण

सात कायरा—(९) औदारिक काययोग
(१०) औदारिक मिश्र काययोग।
(११) वैक्रिय काययोग।
(१२) वैक्रिय मिश्र काययोग
(१३) आहारक काययोग
(१४) आहारक मिश्र काययोग
(१५) कार्मण काययोग।

९—नौ बोले उपयोग बारह—
पांच ज्ञान—(१) मतिज्ञान (२) श्रुत ज्ञान (३) अवधिज्ञान,
(४) मन पर्यव ज्ञान (५) केवल ज्ञान।
तीन अज्ञान-(६) मति अज्ञान (७) श्रुत अज्ञान
(८) विभग अज्ञान।
चार दर्शन-(९) चक्षु दर्शन (१०) अचक्षु दर्शन
(११) अवधि दर्शन (१२) केवल दर्शन

१०—दसवें बोले कर्म आठ—
(१) ज्ञानावरणीय कर्म (२) दर्शनावरणीय कर्म
(३) वेदनीय कर्म (४) मोहनीय कर्म (५) आयुष्य कर्म
(६) नाम कर्म (७) गोत्र कर्म (८) अन्तराय कर्म।

११—ग्यारहवें बोले गुणस्थान चौदह—
(१) मिथ्यादृष्टि गुणस्थान (२) सास्वादन सम्यग्दृष्टि

गुणस्थान (३) मिश्र गुणस्थान (४) अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान (५) देशविरति गुणस्थान (६) प्रमत्त सयत गुणस्थान (७) अप्रमत्त सयत गुणस्थान (८) निवृत्ति बादर गुणस्थान (९) अनिवृत्ति बादर गुणस्थान (१०) सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान (११) उपशांतमोह गुणस्थान (१२) क्षीणमोह गुणस्थान (१३) सयोगी केवली गुणस्थान (१४) अयोगी केवली गुणस्थान।

१२—बारहवे बोले पांच इन्द्रियोंके तेईस विषय—

श्रोत्रेन्द्रिय के तीन विषय—(१) जीव शब्द (२) अजीव शब्द (३) मिश्र शब्द।

चक्षुरिन्द्रियके पांच विषय—(४) कृष्ण वर्ण (५) नील वर्ण (६) रक्त वर्ण (७) पीत वर्ण (८) श्वेत वर्ण

घ्राणेन्द्रियके दो विषय—(९) सुगन्ध (१०) दुर्गन्ध।

रसनेन्द्रियके पांच विषय—(११) तिक्त रस (१२) कटु रस (१३) कषाय रस (१४) आम्ल रस (१५) मधुर रस।

स्पर्शनेन्द्रियके आठ विषय—(१६) शीत स्पर्श (१७) उष्ण-स्पर्श (१८) रूक्ष स्पर्श (१९) स्निग्ध स्पर्श (२०) ल[illegible]

(२१) गुरु स्पर्श (२२) मृदु स्पर्श
(२३) कर्कश स्पर्श।

१३—तेरहवें बोले दस प्रकार के मिथ्यात्व—

(१) धर्मको अधर्म समझने वाला मिथ्यात्वी
(२) अधर्मको धर्म समझने वाला मिथ्यात्वी
(३) साधुको असाधु समझने वाला मिथ्यात्वी
(४) असाधुको साधु समझने वाला मिथ्यात्वी
(५) मार्गको कुमार्ग समझने वाला मिथ्यात्वी
(६) कुमार्गको मार्ग समझने वाला मिथ्यात्वी
(७) जीवको अजीव समझने वाला मिथ्यात्वी
(८) अजीवको जीव समझने वाला मिथ्यात्वी
(९) मुक्त को अमुक्त समझने वाला मिथ्यात्वी
(११) अमुक्तको मुक्त समझने वाला मिथ्यात्वी

: ११ :

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—धर्म त्याग में है या भोग में ?

उत्तर—त्याग में।

प्रश्न—धर्म अहिंसा मे या हिंसा मे ?

उत्तर—अहिंसा में।

प्रश्न—धर्म मूल्य है या अमूल्य ?

उत्तर—अमूल्य।

प्रश्न—धर्म उपदेश में है या जबरदस्ती में ?

उत्तर—उपदेश में।

प्रश्न—धर्म भगवान की आज्ञा में है या आज्ञा बाहिर ?

उत्तर—आज्ञा में।

प्रश्न—धर्म सुपात्र दान में है या कुपात्र दान मे ?

उत्तर—सुपात्र दान में।

प्रश्न—धर्म असयति जीवों के जीने की वांछा मे है, मरने की वांछा मं है या तरने की वांछा मे ?

उत्तर—तरने की वांछा में।

प्रश्न—जैन धर्म का क्या अर्थ है ?

उत्तर—'जिन' के द्वारा प्रवर्तित धर्म को जैन धर्म कहते हैं।

जैन तत्त्व संग्रह

प्रश्न—'जिन' किसे कहते हैं ?

उत्तर—राग द्वेष विजेता को 'जिन' कहते हैं।

प्रश्न—तेरापन्थ का क्या अर्थ है ?

उत्तर—हे प्रभो ! तेरापन्थ।

प्रश्न—तेरापन्थी कौन कहलाता है ?

उत्तर—पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति इन तेरह नियमों को पालन करने वाला तेरापन्थी कहलाता है।

प्रश्न—अरिहन्त कौन होते हैं ?

उत्तर—चार घाती कर्म शत्रुओं का नाश करने वाले।

प्रश्न—धर्म का क्या लक्षण है ?

उत्तर—'आत्म शुद्धि साधन धर्मं' आत्म शुद्धि का जो साधन है वह धर्म है।

प्रश्न—आध्यात्मिक दया का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—पापाचरणों से आत्मा की रक्षा करना आध्यात्मिक दया है।

प्रश्न—आध्यात्मिक दान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—संयम की पुष्टि करनेवाला आध्यात्मिक (धर्म) दान है।

: १२ :

नव-तत्त्व-द्वार

तत्त्वका अर्थ है पदार्थ, परमार्थिक वस्तु या सत्।

तत्व नौ हैं —

१—जीव, २—अजीव, ३—पुण्य, ४—पाप, ५—आश्रव, ६—सम्वर, ७—निर्जरा, ८—बन्ध, ९—मोक्ष।

(१) जीव—जिसमें चैतन्य हो, जाननेकी प्रवृत्ति हो, वह जीव है।

(२) अजीव—जिसमें चैतन्य न हो, वह अजीव है।

(३) पुण्य—शुभ-कर्म पुद्गलोंका नाम पुण्य है।

(४) पाप—अशुभ-कर्म पुद्गलोंका नाम पाप है।

(५) आश्रव—कर्म ग्रहण करनेवाले आत्म परिणाम आश्रव हैं।

(६) सम्वर—कर्म निरोध करनेवाले आत्म परिणाम सवर हैं।

(७) निर्जरा—तपस्या और उससे होनेवाली आत्माकी आंशिक उज्ज्वलता निर्जरा है।

(८) बन्ध—आत्मा के साथ शुभ-अशुभ कर्मका सम्बन्ध होना बन्ध है।

(९) मोक्ष—सब कर्मों से छूट जाना—आत्म-स्वरूप में अवस्थित होना मोक्ष है।

(आचार्य भिक्षु रचित तेरह द्वार १ से अनुदित)

: १३ :

दृष्टान्त-द्वार

नौ तत्त्वों पर एक रूपक —

जीव एक तालाब है। अजीव अतालाब-रूप है। पुण्य और पाप तालाबसे निकलते हुए पानीके समान हैं। आश्रव तालाब का नाला है। नालेको बाँध देना सम्वर है। उलीचकर या मोरीमें पानी निकालना निर्जरा है। तालाबके अन्दरका पानी बन्ध है। खाली तालाब मोक्ष है।

(१-२) जीव और अजीव ये दो मूल तत्त्व हैं। बाकीके तत्त्व इनकी अवस्थाएँ हैं। जीव और अजीवकी अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। फिर भी उनके चैतन्यगुण और अचैतन्यगुणका विनाश नहीं होता। जैसे— सोनेको तोड़-भाँजकर उसके कड़े, कगन आदि अनेक प्रकारके आभूषण बनाने पर भी उसका नाश नहीं होता, केवल उसके रूप बदलते हैं।

(३-४) पुण्य-पाप, पथ्य-अपथ्य भोजनके समान हैं। ज्यों जीवके पथ्य-भोजन घटे (कम हो) और अपथ्य-भोजन बढ़े तो रोग बढ़ता है और आरोग्य घटता है और जब अपथ्य-भोजन घटे, पथ्य-भोजन बढ़े तब आरोग्य

बढ़ता है और रोग घटता है। पथ्य-अपथ्य दोनों प्रकारके भोजनके बिना मृत्यु हो जाती है। ठीक इसी प्रकार जब जीवके पुण्य घटे, पाप बढ़े तब सुख घटता है और दुःख बढ़ता है और जब पुण्य बढ़े, पाप घटे तब सुख बढ़ता है और दुःख घटता है। पुण्य पाप दोनोंके छूटने से मुक्ति होती है।

(५) आश्रव—(क) ज्यों तालाबके नाला, हवेलीके द्वार और नौकाके छेद होता है, त्यों जीवके आश्रव होता है।

(ख) ज्यों तालाब और नाला, हवेली और द्वार, नौका और छेद एक हैं, त्यों जीव और आश्रव एक हैं।

(ग) जिसके द्वारा पानी आये वह नाला है, जिसके द्वारा मनुष्य आये वह द्वार है, जिसके द्वारा पानी आये वह छेद है, त्यों जिसके द्वारा कर्म आये वह आश्रव है।

(घ) ज्यों पानी और नाला, मनुष्य और द्वार पानी और छेद दो हैं, त्यों कर्म और आश्रव दो हैं।

(ङ) जिसके द्वारा पानी आये वह नाला है किन्तु पानी नाला नहीं, जिसके द्वारा

मनुष्य आये वह द्वार है किन्तु मनुष्य द्वार नहीं, जिसके द्वारा पानी आये वह छेद है किन्तु पानी छेद नहीं, त्यों जिसके द्वारा कर्म आये वह आश्रव है किन्तु कर्म आश्रव नहीं।

(६) सम्वर—ज्यों तालावका नाला रोके, हवेलीका द्वार रोके और नौकाका छेद रोके, त्यों जीव के आश्रव रोकना सम्वर है।

(७) निर्जरा - ज्यों तालावका पानी मोरी से निकाला जाता है हवेलीका कूड़ा कर्कट साफ किया जाता है, नौकाका पानी उलीच उलीच कर निकाला जाता है, त्यों शुभ प्रवृत्तिके द्वारा कर्मों को अलग कर आत्माको उज्ज्वल बनाना निर्जरा है।

(८) बन्ध—ज्यों तेल और तिल, घी और दूध, धातु और मिट्टी आपसमें मिले हुए हैं, त्यों जीव और कर्म का आपसमें मिलना बन्ध है।

(९) मोक्ष—ज्यों कोल्हू आदिके द्वारा तेल खलरहित होता है, मन्थनी आदिके द्वारा घी छाछरहित होता है, अग्नि आदिके द्वारा धातु मिट्टीरहित होती है, त्यों तप, संयम आदिके द्वारा जीवका सर्वथा कर्मरहित होना मोक्ष है।

प्रथम भाग

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—क्या जीव और कर्म की 'आदि' है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि ये कभी पैदा ही नहीं हुए।

प्रश्न—क्या पहले जीव और बादमें कर्म बने, यह ठीक है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि कर्मों के बिना जीव कहा रहा ? मोक्ष जाने के बाद वह वापिस आता नहीं।

प्रश्न—क्या पहले कर्म और बादमें जीव बने यह ठीक है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि कर्म किये बिना होते नहीं और जीव बिना कर्म करे कौन ?

प्रश्न—क्या जीव कर्म रहित है ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि यदि जीव कर्म रहित हो तो करणी (तपस्या) किसलिये करे।

प्रश्न—जीव और कर्म का मिलाप कैसे होता है ?

उत्तर—अपश्चानुपूर्वीतया—न पहले और न पीछे—अनादि काल से जीव और कर्म का सम्बन्ध चला आ रहा है।

(आचार्य भिक्षु रचित तेरह द्वार २ से अनुदित)

मनुष्य आये वह द्वार है किन्तु मनुष्य द्वार नहीं, जिसके द्वारा पानी आये वह छेद है किन्तु पानी छेद नहीं, त्यों जिसके द्वारा कर्म आये वह आश्रव है किन्तु कर्म आश्रव नहीं।

(६) सम्वर—ज्यों तालाबका नाला रोके, हवेलीका द्वार रोके और नौकाका छेद रोके, त्यों जीव के आश्रव रोकना सम्वर है।

(७) निर्जरा—ज्यों तालाबका पानी मोरी से निकाला जाता है हवेलीका कूड़ा कर्कट साफ किया जाता है, नौकाका पानी उलीच उलीच कर निकाला जाता है, त्यों शुभ प्रवृत्तिके द्वारा कर्मों को अलग कर आत्माको उज्ज्वल बनाना निर्जरा है।

(८) बन्ध—ज्यों तेल और तिल घी और दूध, धातु और मिट्टी आपसमें मिले हुए हैं, त्यों जीव और कर्म का आपसमें मिलना बन्ध है।

(९) मोक्ष—ज्यों कोल्हू आदिके द्वारा तेल खलरहित होता है, मन्थनी आदिके द्वारा घी छाछरहित होता है, अग्नि आदिके द्वारा धातु मिट्टीरहित होती है, त्यों तप, सयम आदिके द्वारा जीवका सर्वथा कर्मरहित होना मोक्ष है।

: १४ :

षड्-द्रव्य-द्वार

द्रव्य छह हैं —

१—धर्मास्तिकाय

२—अधर्मास्तिकाय

३—आकाशास्तिकाय

४—काल

५—पुद्गलास्तिकाय

६—जीवास्तिकाय

अस्ति का अर्थ है प्रदेश और कायका अर्थ है समूह। प्रदेशसमूहको अस्तिकाय कहते हैं।

(१) धर्मास्तिकाय—जीव और पुद्गल के हलन-चलन मे जो असाधारण रूप से सहायक होता है, वह धर्मास्तिकाय है।

(२) अधर्मास्तिकाय—जीव और पुद्गलके स्थिर रहने मे जो असाधारण रूपसे सहायक होता है, वह अधर्मास्तिकाय है।

प्रथम भाग

(३) आकाशास्तिकाय—जो सब पदार्थों को आश्रय दे, वह आकाशास्तिकाय है।

(४) काल—जो पदार्थों के परिवर्तनका हेतु है, वह काल है।

(५) पुद्गलास्तिकाय—जो वर्ण गन्ध रस स्पर्शयुक्त होता है, वह पुद्गलास्तिकाय है।

(६) जीवास्तिकाय—जो चैतन्ययुक्त होता है, वह जीवास्तिकाय (जीव) है।

पांच अस्तिकाय प्रदेशयुक्त होने के कारण सप्रदेशी हैं। काल के प्रदेश नहीं होता इसलिये वह अप्रदेशी है।

धर्म अधर्म, लोकाकाश एक और जीव के प्रदेश असंख्य-असंख्य होते हैं।

पुद्गलके प्रदेश दो से लेकर अनन्त तक होते हैं।

अलोकाकाश के प्रदेश अनन्त होते हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश तीनों एक द्रव्य हैं, व्यापक हैं।

काल, पुद्गल और जीव तीनों अनेक-द्रव्य हैं—संख्यामें अनन्त हैं।

• १५ •

रूपी-अरूपी-द्वार

रूपी-अरूपी—जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण मिलें वह रूपी और जिसमें ये न मिलें वह अरूपी होता है।

जीव, आश्रव, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष—ये अरूपी हैं।
अजीव रूपी-अरूपी दोनों हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये चार अरूपी हैं।
पुद्गल, पुण्य, पाप और बन्ध—ये रूपी हैं।

(आचार्य भिक्षुरचित तेरहद्वार ६ से अनुदित)

१६

सावद्य-निरवद्य द्वार

जीव—सावद्य, निरवद्य दोनों है। शुभ परिणामोंकी अपेक्षा निरवद्य और अशुभ परिमाणोंकी अपेक्षा सावद्य।

अजीव—पुण्य, पाप और बन्ध सावद्य, निरवद्य दोनों नहीं—इसलिए अजीव है।

पहले चार आश्रव और अशुभ योग-आश्रव सावद्य है। शुभ योगसे निर्जरा होती है, इसलिए यह निरवद्य है।

सम्वर, निर्जरा और मोक्ष निरवद्य हैं।

. १७

हेय-ज्ञेय-उपादेय द्वार

छोड़ने योग्य वस्तुको हेय, जानने योग्य वस्तुको ज्ञेय और ग्रहण करने योग्य वस्तुको उपादेय कहते हैं।

जीवकी दो प्रकारकी प्रवृत्तियां होती हैं —

१—बहिरात्मभाव—रागद्वेष मोहात्मक परिणति।

२—अन्तरात्मभाव—आत्माका शुद्ध स्वरूप।

इनमें पहली हेय है और दूसरी उपादेय।

अजीव, पुण्य, पाप, बन्ध और आस्रव—ये हेय हैं।

सम्वर, निर्जरा और मोक्ष—ये तीन उपादेय हैं।

ज्ञेय नव ही तत्व हैं।

(आचार्य भिक्षु रचित तेरह द्वार १२ से अनुदित)

· १८

लोकालोक-द्वार

जहां धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव—ये छहों द्रव्य हों, वह लोक है।

जहां सिर्फ एक आकाश ही हो, वह अलोक है।

लोकाकाश असंख्य योजन लम्बा-चौड़ा है। इसके तीन भेद हैं —

१—ऊंचा लोक

२—तिरछा लोक (मध्य लोक)

३—नीचा लोक

अलोकाकाश अनन्त है। वह लोकाकाश के चारों तरफ फैला हुआ है।

: १६ :

छात्र-प्रतिज्ञा

जीवन हम आदर्श बनायें,
उन्नति-पथ पर बढ़ते जायें।
क्यों न छात्र गुणपात्र कहायें,
जीवन हम आदर्श बनायें॥

उच्च-उच्च आचरण करेंगे,
दुराचार से सदा डरेंगे।
आत्म-शक्तिका परिचय देंगे,
नहीं उछृङ्खलता अपनायें॥
जीवन० ॥ १ ॥

सत्य सरोवर मे झूलेंगे,
तत्त्व अहिंसा को छू लेंगे।
विनय नम्रता नहीं भुलेंगे,
अनुशासनके नियम निभायें॥
जीवन० ॥२॥

प्रथम भाग

नहीं किसी को गाली देंगे,
नहीं किसी से घृणा करेंगे।
बोल जबान नहीं बदलेंगे,
पद-लोलुपता नहीं सताये॥
जीवन० ॥ ३ ॥

झूठ कपट से सदा बचेंगे,
जुआ चोरी नहीं रचेंगे।
पर-निन्दा में सिर न पचेंगे,
आत्म-विजय निज लक्ष्य बनायें॥
जीवन० ॥ ४ ॥

मद्यपान में नहीं पड़ेंगे,
भांग, तमाखू से न भिड़ेंगे।
बुरी आदतों से नहीं लड़ेंगे।
ईर्ष्या, मत्सर, मान मिटाय।
ब्रह्मचर्य की ज्योति जगाये।
जीवन० ॥ ५ ॥

आस्तिकता को आश्रय देंगे,
नास्तिकता को न पनपने देंगे।
त्याग-मार्ग में तन मन देंगे
सद्गुरु में श्रद्धा रख पायें।
बाह्याडम्बर में न लुभायें॥
जीवन० ॥ ६ ॥

महनशील बन बीर बनेंगे,
विश्व-मैत्री का सबक सुनेंगे।
पशुबल को प्रश्रय नहीं देंगे,
"तुलसी" धार्मिकता पनपाये।
जीवन हम आदर्श बनायें॥ ७॥

प्रश्न

१—जीवनको आदर्श बनानेके लिये किन-किन गुणोंको अपनाना चाहिये ?

२—"सत्य सरोवरमे झूलेंगे" का क्या अर्थ है ?

३—आत्म-विजय से क्या लाभ है ?

४—पशु-बलको प्रश्रय देनेका भावार्थ बताओ।

५—'आस्तिकता को आश्रय देंगे', इससे क्या समझते हो ?

६—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ बताओ —
उच्छृ खलता, अनुशासन, लक्ष्य, बाह्याडम्बर

---

२० .

जैन-धर्म

राग, द्वेष विजेताको 'जिन' कहते हैं। 'जिन' के द्वारा जो धर्म प्रवर्तित होता है, उसका नाम जैन धर्म है। इस अव-सर्पिणीकालमें जैन धर्मके चौबीस प्रवर्तक हुए हैं। इनमें पहले प्रवर्तक भगवान् ऋषभदेव थे और चौबीसवें श्रमण भगवान् महावीर।

इन सभी तीर्थङ्करोंने अहिंसा-धर्मका प्रचार किया। उन्होंने बताया कि प्राणीमात्र[1] सुखका इच्छुक है। दुःख कोई नहीं चाहता। इसलिए किसीको मत सताओ। सब[2] जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता इसलिए किसीको मत मारो। सर्व[3] प्राणीभूत, जीव और सत्त्व हैं इनका घात मत करो। बलात्कारसे किसीको अपने अधीन मत करो, प्रहार मत करो, शारीरिक, मानसिक पीडा मत उपजाओ, क्लान्त

१—सव्वे जीवा सुहसाया दुहपडिकूला।

२—सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं।

३—सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता न हनतव्या न अज्जावेयव्वा न परिघेतव्वा, न परितावेयव्वा, न उद्दवेयव्वा, एस धम्मे सुद्धे णितिये सासये।

मत करो, उपद्रव मत करो। यह धर्म शुद्ध, नित्य और शाश्वत है। इस जिन वाणी में धर्म का शुद्ध स्वरूप वर्णित है। सत्य आदि चार और महाव्रत हैं। वे अहिंसाकी ही रक्षा पंक्तियां हैं। अहिंसा जैन धर्म का मूल है इसलिए जैन-धर्मके सिद्धान्त कलह-उत्पीडित जगत्के लिये पूर्ण हितकर हैं। जैन-धर्मका दृष्टिकोण बहुत उदार है। अपेक्षावाद के द्वारा जैन-धर्म सरल और विवाद रहित बना हुआ है। जैन धर्म उद्योग, भाग्य, नियति, स्वभाव, काल आदि बातोंका समन्वय करता है। आचार और विचार दोनोंको प्रधान मानता है इसलिए यह परिपूर्ण है।

प्रश्न

१—जैन-धर्मका अर्थ बताओ।

२—शुद्ध धर्मका स्वरूप क्या है ?

३—जैन-धर्म उद्योगको मानता है या भाग्य को ?

४—अपेक्षावादका भावार्थ बताओ।

५—प्राणी-भूत, जीव और सत्व किसे कहते हैं ?

६—निम्न शब्दों के अर्थ बताओ —

अवसर्पिणीकाल, बलात्कार, अपेक्षावाद, समन्वय।

तरापन्थ

आचार्य भिक्षुने स्थानकवासी सम्प्रदायसे पृथक् होकर जैनके मूल तत्त्वोंका प्रचार शुरू किया। आपका विचार सिर्फ विशुद्ध प्रचार और साधु संस्थाको संगठित करनेका था। इसलिए आपने अपनी साधु संस्थाका कोई नाम न रखा। जोधपुरकी घटना है कि वहाँ एक दुकान में तेरह[1] श्रावक पौषध कर रहे थे। उस समय स्थानीय दीवान फतेहसिंहजी सिंघी उधरसे आ निकले। उन्होंने श्रावकोंसे पूछा—आप यहाँ पौषध क्यों कर रहे हैं ? इसके उत्तर में श्रावकोंने बताया कि हमारे गुरुने स्थानकका परित्याग कर दिया है इसलिए हमने यहाँ पौषध किया है। दीवानजीके आग्रहपर उन्होंने सारा विवरण सुनाया। उस समय वहाँ एक सेवक जाति का कवि पासमें खड़ा था। उसने तेरहकी संख्याको ध्यानमें लाकर तत्काल एक दोहा बना डाला —

आप आप रो गिलो करै आप आप रो मत।
सुणज्यो रे शहर रा लोकां, ए तेरापन्थी तंत॥

आचार्य भिक्षु मेवाड़में विराज रहे थे। उन्हें इसका पता चला। तब उसी समय आसन छोड़कर, हाथ जोड़कर, आपने प्रभुको सम्बोधन करते हुए कहा—"हे प्रभो ! यह तेरापन्थ है"

[1]—स्वामीजी स्थानकवासी सम्प्रदायसे पृथक् हुए तब उनके साथ तेरह साधु थे और वहाँ भी तेरह श्रावक पौषध किये हुए थे।

तेरापन्थ के तेरह नियम

तेरापन्थके प्रमुख तेरह नियम है, जैसे पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति।

पाँच महाव्रतों का पहले वर्णन किया जा चुका है।

पाँच समिति—

१ ईर्या—देखकर चलना।

२ भाषा—विचार पूर्वक निरवद्य बोलना।

३ एषणा—शुद्ध आहार-पानी की गवेषणा करना।

४ आदाननिक्षेप—वस्त्र आदिको सावधानी से लेना और रखना।

५ परिष्ठापन—उचित भूमिमे मल-मूत्रका उत्सर्ग करना।

तीन गुप्ति—

१ मनो गुप्ति—मनको वशमें करना।

२ वाक् गुप्ति—वचन को वशमे करना।

३ काय गुप्ति—शरीर का संयम करना।

साधुओं के लिये तेरह नियम पूर्णरूप से पालनीय हैं और श्रावकों को इनका शक्ति अनुसार पालन करना चाहिए। तेरापन्थका स्वामीजी ने दूसरा अर्थ यह किया है कि जो इन तेरह नियमों को पालता है या इनमें विश्वास रखता है, वह तेरापन्थी है।

प्रथम भाग

प्रश्न

१—तेरापन्थ के संस्थापक कौन थे ?

२—तेरापन्थ नाम कहाँ और किस कारण से लिया गया ?

३—तेरह नियमों के नाम बताओ।

४—क्या श्रावकों के लिये तेरह नियमों का पालन जरूरी है ?

५—एषणा समिति का अर्थ बताओ।

६—वाणीका संयम करना कौन-सा नियम है ?

• २२ •

श्रीमद् भिक्षु स्वामी

(प्रथमाश)

तेरापन्थके प्रवर्तक श्रीमद् भिक्षु स्वामीका जन्म वि० स० १७८३ आषाढ शुक्ला १३ को कटालिया (मारवाड) में हुआ था। आपके पिताका नाम बल्लूजी तथा माताका नाम दीपांजी था। आप ओसवाल वश [सुकलेचा] मे एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। आपकी पत्नी का विरक्तावस्थामें देहात हो गया था। उसके बाद आपने एकाकी दीक्षा लेनेकी ठानी परन्तु आपकी माताने दीक्षा की आज्ञा देनेसे इन्कार कर दिया। तत्कालीन स्थानकवासी सम्प्रदायके आचार्य रघुनाथजीके बहुत कहने-सुनने पर माताने उत्तर दिया—'महाराज ! मैं इसे दीक्षाकी अनुमति नहीं दे सकती क्योंकि जब यह गर्भमें था, तब मैंने सिंहका स्वप्न देखा इसलिये यह सिंह जैसा पराक्रमी होगा।' रघुनाथजीने उत्तर देते हुए कहा—'बाई ! यह तो बहुत अच्छी बात है। तेरा बेटा साधु बनकर सिंह की तरह गूंजेगा।' इस पर

वि० स० १८०८ में मार्गशीर्ष कृष्णा १२ को बगडी (मारवाड़) में उनके पास दीक्षा ग्रहण की।

आपकी दृष्टि पैनी थी। तत्त्वकी गहराई में पैठना आपके लिए स्वाभाविक सी बात थी। आप थोडे ही वर्षों में जैन-शास्त्रों के पारगत पडित बन गये। वि० स० १८१५ के आसपास आपके दिमाग में साधुवर्ग की आचार-विचार सम्बन्धी शिथिलता के प्रति एक क्रान्ति की भावना पैदा हुई। आपने अपने क्रान्तिपूर्ण विचारोंको आचार्य रघुनाथजीके सामने रक्खा। दो वर्षतक विचार-विमर्ष होता रहा। आखिर कोई सन्तोषजनक निणय नहीं हुआ, तब आप वि० स० १८१७ चैत्र शुक्ला ६ को उनसे पृथक हो गये।

प्रश्न

१—भिक्षु स्वामीके जन्मका वर्ष और तिथि बताओ।

२—स्वामीजी की माता ने दीक्षा की अनुमति देने से हिच-किचाहट क्यों की ?

३—स्वामीजीने दीक्षा कब और किसके पास ली ?

४—स्वामीजी स्थानकवासी सम्प्रदाय से पृथक कब और क्यों हुए ?

२३ :

श्रीमद् भिक्षु स्वामी

(द्वितीयांश)

वि० स० १८१७ आषाढ शुक्ला १५ के दिन केलवा (मेवाड) मे आपने जैन शास्त्र-सम्मत दीक्षा ग्रहण की। उस समय आपके आदेशमें १२ साधु थे। कई आपकी सेवामे और कई दूसरी जगह उपस्थित थे। उसी दिनसे स्वामीजी की अध्यक्षता में एक सुसज्जित साधु सस्था का सूत्रपात हुआ और आगे जाकर थोड़े ही समय के बाद वह तेरापन्थ के नाम से प्रख्यात हुई। वि० स० १८१७ से १८३१ तकका आपका जीवन महान् सघर्षमय रहा। यह १५ वर्ष का समय तपस्या, कठोर साधना एव सस्थाकी भावी रूपरेखा की आलोचना और शास्त्रोंका गम्भीर अध्ययन करने में बीता।

उसके बाद १८३२ में जब यह निश्चित हो चुका कि सस्था का कार्यक्रम विश्वस्त एव सुन्दर ढगसे चलेगा, तब आपने अपने प्रमुख शिष्य भारमलजी को युवाचार्य पद दिया और उसके

साथ-साथ मर्यादा का सूत्रपात किया। पहले पहल ग्यारह मर्यादावाला लेख मार्गशीर्ष कृष्णा ७ को लिखा गया था। उसके बाद समय-समय पर आप नये-नये नियमोंसे सन को दृढ़ करते रहे। आपके शासनकालमें ४६ साधु और ५६ साध्वियां दीक्षित हुई। उनमें आचार्य भारमलजी, हरनाथजी, टोकरजी, खेतसीजी, वेणीरामजी व हेमराजजी आदि साधु उल्लेखनीय हैं।

वि० स० १८६० सिरियारी (मारवाड) में आपका भाद्र शुक्ला १३ के दिन सात पहर के अनशन में समाधिपूर्ण स्वर्गवास हुआ। उस समय आपकी आयु ७७ वर्ष की थी।

प्रश्न

१—स्वामीजीने शास्त्र-सम्मत दीक्षा कब और किस गांवमें ली?
२—दीक्षा ली, उसवक्त स्वामीजीके पास क्या और भी साधु थे?
३—महान् सघर्ष में स्वामीजी के कितने वर्ष बीते?

: २४ :

पाप से डरो

एक गावमें क्षीरकदम्ब नाम के उपाध्याय रहते थे। उनके पास वसु, पर्वत और नारद—ये तीन बालक पढ़ते थे। वसु राजनगरका राजकुमार था। पर्वत उपाध्याय (क्षीरकदम्ब) का पुत्र था और नारद एक ब्राह्मण का पुत्र था। उपाध्याय उनको बड़े प्रेमसे पढ़ाते थे। एक दिन कई साधु आपसमें बातचीत कर रहे थे कि इन बालकोंमें दो तो नरकगामी हैं और एक स्वर्गगामी। उपाध्यायने यह बात सुन लिया और उनकी परीक्षाके लिए आटे के तीन मुर्गे बनाये और तीनों शिष्योंको बुलाकर कहा—लो, एक-एक मुर्गा ले जाओ और जहाँ कोई नहीं देखता हो, वहाँ इन्हें ले जाकर मार डालो। वसुने एक अन्धेरी गुफामें जाकर उसे मार डाला। पर्वतने भी कहीं एक गढ्ढेमें जाकर उसे मार डाला। परन्तु नारद घूमघामकर जैसे गया था वैसे ही लौट आया।

उपाध्यायने उनसे पूछा—क्यों, मार आये ? वसु और पर्वत ने कहा—जी हां, और नारद ने कहा—जी नहीं।

उपाध्यायने नारदसे पूछा—तुमने मेरा आदेश क्यों नहीं माना ?

नारद—मैंने तो आपके आदेशका ही पालन किया है। मुझे तो ऐसा कोई भी स्थान नहीं मिला, जहां कोई भी नहीं देखता हो।

उपाध्याय—तुम कहीं एकान्तमें नहीं गये होगे।

नारद—मैं बहुत दूर घने जंगलमें चला गया था और ज्यों ही उसे मारने लगा, त्योंही मुझे याद आया कि और कोई नहीं तो परमात्मा तो देखते ही रहते हैं। बस, मैंने तो सोच लिया कि अब कोई भी स्थान ऐसा नहीं है, जहां कोई भी न देखता हो।

उपाध्यायने जान लिया कि वसु और पर्वतकी दुर्गति होगी और नारद की सद्गति।

प्रश्न

१—वसु, पर्वत और नारद—इन तीनों में से नरकगामी कौन थे ?

२—नारदने मुर्गेको क्यों नहीं मारा ?

३—क्या परमात्मा सब जगह देखते हैं ?

४—उपाध्यायके आदेशका पालन किसने किया ?

: २५ :

प्रभात-कार्य

प्रकृतिके नियमानुसार सब लोग रात्रिको सोते हैं और सुबह उठते हैं। उठनेके बाद शरीर-सम्बन्धी प्रभात-कृत्य करते हैं। शरीरको साफ सुथरा एवं स्वस्थ रखने की कोशिश करते हैं, तो फिर मनको पवित्र करनेके लिए धर्माचरण क्यों नहीं करना चाहिए ?

प्रातःकाल परमेष्ठी-महामन्त्रकी एक नवकरवाली अवश्य गुननी चाहिये। हाथकी अंगुलियोंके बारह पोरे होते हैं, उन पर नव बार मन्त्र-जाप करनेसे नवकरवाली कहलाती है। इसका दूसरा नाम माला है। कई-कई आदमी अंगुलियोंके सिरों पर मन्त्र जाप करते हैं और कई-कई मालाके मनकों पर। इन दोनों तरहसे ही १०८ बार जाप किया जाता है। मन्त्र जपनेके समय दिल सरल और स्वच्छ होना चाहिये।

अगर गांवमें साधु-साध्वियां हों तो उनके दर्शन करने चाहिए क्योंकि संयमी आत्माके दर्शन करनेसे दिलमें संयमकी भावना उत्पन्न होती है। उनके शुद्ध-आचरण देखनेको मिलते हैं। इससे मानसिक विचार पवित्र बनते हैं।

और कमसे कम एक सामायिक करनी चाहिए। दैनिक उपासनाके लिये यह बहुत उपयोगी है। ४८ मिनटके लिए सांसारिक झंझटोंसे दूर होकर ज्ञान ध्यान, स्वाध्यायमें मन लगानेसे बड़ी शान्ति मिलती है। जीवनको सुखमय बनानेके लिए संयम आवश्यक होता है। सामायिकसे समताका लाभ और संयमका अभ्यास होता है।

प्रश्न

१—मनको पवित्र करनेका क्या उपाय है ?

२—साधुओंके दर्शन क्यों करने चाहिये ?

३—महामन्त्रका जाप करनेसे क्या लाभ है ?

४—महामन्त्रमें तुम किनका स्मरण करते हो ?

५—नवकरवाली शब्द का क्या अर्थ है ?

६—हाथके सिरों पर कै बार जप जपनेसे नवकरवाली होती है।

७—सामायिकसे क्या लाभ होता है ?

: २६ :

खींचातानी मत करो

सात आदमी एक हाथी देखनेके लिए गये। उनमें छह तो अन्धे थे और एकको सूझता था। छहों में से एकने तो हाथी की सूड पकडी, दूसरेने पूछ पकडी, तीसरेने उसके पैर टटोले, चौथेने उसके दांत पकड़े, पांचवेंके हाथमें कान आये और छठेने उसके पेट पर हाथ फेरा। वे छहों अलग-अलग एक-एक अङ्गको पकड कर मन ही मन उस हाथीके आकारका निश्चय कर एक दूसरेसे कहने लगे—

पहला—हाथी बेंत जैसा है।

दूसरा—हाथी बाँस जैसा है।

तीसरा—हाथी खम्भे जैसा है।

चौथा—हाथी मूसल जैसा है।

पाँचवाँ—हाथी छाज जैसा है।

छठा—हाथी पखाल जैसा है।

इस प्रकार अपने-अपने निर्णयको सच्चा ठहरानेके लिए वे आपसमें झगड़ा करने लगे। एक कहने लगा—मैं जो कुछ कहता हूँ, वह सच है और तू जो कहता है, वह झूठ है। दूसरा कहने लगा—मैं जो कहता हू वह सच है और तू जो कहता है

यह बिल्कुल गलत है। इस प्रकार उनको आपस में झगड़ा करते देख, सूझता आदमी बोला—तुम आपसमें क्यों झगड़ते हो? तुम सभी सच्चे हो और सभी झूठे भी। लो, तुम्हें समझाता हूं। हाथीकी सूड़ केले जैसी है, हाथी की पूँछ बांस जैसी है, हाथीके पैर खम्भे जैसे हैं, उसके दांत मूसल जैसे हैं और उसका पेट पखाल जैसा है। इसलिये तुम सब सच्चे हो। परन्तु इस तरह एक एक अंगको लेकर झगड़ा मत करो। जबतक तुम उन सबको मिलाकर नहीं देखोगे तबतक उसके रूपको नहीं जान सकोगे।

बालको! इस तरह तुम भी हर एक चीजको सब बाजुओं से समझो। किसी बातको लेकर खींचातानी मत करो।

प्रश्न

१—अन्धोंने हाथीको किस रूपमें जाना?
२—वे आपस में क्यों लड़े?
३—सूझते पुरुषने उनका झगड़ा कैसे निपटाया?
४—क्या तुमने कभी हाथी देखा है?
५—इस पाठसे तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है?

: २७ :

क्रोध को जीतो

एक आदमीने किसी क्षत्रियको मार डाला। उसके भाईको इस बातका पता चला। तब वह हाथोंमें नंगी तलवार लिए शत्रुकी खोजमें निकल पडा। वह वर्षों तक घूमता रहा, फिर भी शत्रु हाथ नहीं आया। उसने यह प्रतिज्ञा कर ली कि शत्रुको पकडे बिना घर नहीं लौटूँगा। १२ वर्षोंके बाद शत्रु उसके हाथ लगा। क्षत्रियने हाथोंमें तलवार ली। शत्रु पर वार करनेको तैयार हुआ। इतनेमें उसके शत्रुने मुँहमें तिनका डाल लिया, कहने लगा - मैं तेरी गाय हू। क्षत्रियकी तलवार रुक गई। उसने शत्रुको माताके सामने ला खडा किया। सारी बीती बात सुनाई। उसने खेदके साथ कहा—माँ! बारह वर्षों तक भटका तब कहीं यह हाथ लगा और मारने लगा, तब इसने मुँहमें तिनका डाल लिया। अब क्या करू ? माँ ने कोमल शब्दोंमें कहा—बेटा। क्षत्रिय धर्मका पालन करो। जो गाय बन गया—मुँहमें घास डाल ली, उसे मारना उचित नहीं। पुत्र! क्रोधको सब जगह सफल नहीं करना चाहिये।

क्षत्रियने माताके आदेशका पालन करते हुए क्रोधको शान्त किया। तलवार नीचे रख दी। शत्रुको छोड़ दिया।

बालको। जिस प्रकार क्षत्रियने क्रोधको जीता—असफल किया, वैसे ही तुम भी सदा क्रोधको असफल करते रहो। क्रोध मत करो। यदि कभी क्रोध आ जाए तो उसे शान्त करो। क्रोध के आवश में अनर्थ मत करो।

प्रश्न

१—जब क्षत्रियने शत्रुको मारनेके लिये तलवार हाथमें ली, तब शत्रुने क्या कहा ?

२—क्षत्रियने शत्रुको क्यों नहीं मारा ?

३—इस पाठ से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

विनय

(प्रथमांश)

गुरु एवं साधु-साध्वियोंके प्रति नम्रता रखनी चाहिये। कहीं भी साधु साध्वियोंको देखकर बैठे नहीं रहना चाहिये, तत्काल उन्हें नमस्कार करना चाहिये। उनकी दी हुई शिक्षाको आदरसे ग्रहण करना चाहिये। माता-पिता आदि गुरुजनोंका अविनय नहीं करना चाहिये। किसीसे अशिष्ट व्यवहार नहीं करना चाहिये और अपने अनुचित व्यवहारके लिये क्षमा-याचना कर लेनी चाहिये।

फलवान् वृक्ष नम्र होते हैं, ज्ञानवान मनुष्य नम्र होते हैं लेकिन सूखा काठ और मूर्ख टूट जाते हैं पर नमते नहीं। विनय का सब जगह मान होता है। विनयसे विद्या बहुत शीघ्र और अच्छे ढंगसे आती है—आखिर मोक्ष भी तो विनयसे ही मिलता है। विनय ही जैन धर्मका मूल है।

प्रश्न

१—साधु साध्वियोंको देखते ही तुम्हें क्या करना चाहिए ?
२—अविनय से तुम क्या समझ रहे हो ?
३—मूर्ख को सूखे काठके समान क्यों कहा गया है ?

विनय

(द्वितीयपाठ)

सुशीला—मां तुम नीलाको बार-बार उलाहना देती हो पर श्यामा को कुछ भी नहीं कहती, ऐसा क्यों है मां ?

मां—श्यामा बड़ी विनीत है, बेटी।

सुशीला—मां विनीत कैसे ?

मां—बेटी! वह मेरा कहा मानती है। इशारेमें समझती है, दोनों वक्त बड़ों को प्रणाम करती है। मैं जो कुछ काम करनेको कहती हूँ, उसे वह हाथ जोड़ स्वीकार करती है। सबसे मेलजोल रखती है। उसका झुका हुआ सिर, जुड़े हुए हाथ कितने सुहावने लगते हैं ?

सुशीला—मां उसने तो मुझे मोहित कर डाला।

मां—बेटी! नम्रता तो मोहनी-मन्त्र है न। इससे पत्थर भी पसीज जाता है।

सुशीला—मां! नीला विनय नहीं करती ?

मां—नहीं, विनय कहां, वह तो हर बार तड़ाकेसे जवाब देती है। इसलिए वह किसीको भी अच्छी नहीं लगती और न कोई ठीक तरह से काम ही करती है।

सुशीला—विनय बिना ऐसी हालत होती, तब तो मैं सबका विनय किया करूंगी।

मां—हां बेटी। विनय बड़ी किमती चीज़ है, विनयकी पूछ संसार और धर्ममार्ग दोनों में है। बेटी। उद्दण्डता कहीं भी अच्छी नहीं होती। तुमने देखा होगा—फले-फूले झाड़ कितने नमते हैं और सूखा वृक्ष टूट जाय तो भी नहीं नमता। बेटी। विद्वान आदमी होते हैं, वे नमा करते हैं। मूर्ख आदमी कभी नहीं नमते।

सुशीला—मां। मैं समझ गई, अपने यहां साधु साध्वी आया करते हैं, तब तुम मत्र खड़ी हुआ करती हो, सिर झुकाया करती हो, हाथ जोड़ा करती हो, बस यही बात है तुम उनकी विनय किया करती हो।

मां—हां, सुशीला। वे अपने धर्मगुरु हैं। उनकी तो जितनी विनय भक्ति की जाय वह थोड़ी है। बेटी! वे अपनेको आत्म-सुधारका रास्ता बताते हैं। बेटी। संसारी गृहस्थ जो बड़े हैं, उनका विनय करना अपना मुख्य काम है। उसी तरह धर्मगुरुओं का विनय करना अपना पहला धर्म है।

सुशीला—मां आज मुझे बड़ी अच्छी बात बताई। मैं विनयको सदा याद रखूँगी और अविनय कभी नहीं करूंगी।

प्रश्न

१—अशिष्ट व्यवहार का अर्थ स्पष्ट समझाओ।

२—अगर तुमसे अशिष्ट व्यवहार हो जाय तो तुम क्या करोगे?

३० .

जीवनका मूल्य आंको

संसारकी यह रीति है—कायदा है कि लोग अपनी प्राप्त वस्तु का उपयोग करते हैं—उसे काममें लेते हैं। वस्तु जितनी ही दुर्लभ और बहुमूल्य होती है, उसका उपयोग भी उतनाही बढ़ता जाता है—महत्त्व भी उतना ही हो जाता है। इसलिए श्रेष्ठ वस्तु का सदुपयोग करना—उसे अच्छे काममें लाना मानवका मुख्य कर्त्तव्य है और इसीसे वस्तुकी श्रेष्ठता सार्थक है।

मानव-जीवनकी दुर्लभता

सर्व सिद्धान्त सम्मत ८४ लाख योनियोंमें मनुष्य योनि—मानव जीवन सबसे अधिक दुर्लभ, दुष्प्राप्य और बेशकीमती माना गया है। ८४ लाख योनिके चक्रमें भटकता हुआ जीव

अपने किन्हीं शुभ कर्मोंके सद् उदयसे मनुष्य-योनि पाता है। परन्तु यह कहते हुए दुःख होता है कि दुर्लभ मनुष्य-योनि और इसके अतिरिक्त पूर्ण विकसित इन्द्रियां तथा स्वस्थ शरीर पाकर भी बहुतसे मानव अपने बहुमूल्य जीवनका क्या सदुपयोग किया जाय ? इसे भुला बैठे हैं, यह उनकी कितनी भारी उपेक्षा है—गलती है।

विचित्र दृष्टिकोण

बालक सोचते हैं कि अभी हम बच्चे हैं, खेल कूद और हँसी खुशी ही हमारा एकमात्र कार्य है। नौजवान सोचते हैं कि हम युवक हैं, अभी हमारा सुखोपभोगका समय है। अभी हम क्यों सोचें कि जीवनका वास्तविक सदुपयोग क्या है—चरम लक्ष्य क्या है और धर्मका जीवनमें क्या स्थान है ? धर्म करना तो बुड्ढों का काम है जबकि वे सांसारिक कार्यों के लिए बेकार हो जाते हैं। अब जरा बुड्ढोंकी ओर चलिये उनमें भी बहुत से ऐसा ही कहते मिलेंगे कि हमारी अवस्था बुड्ढी हो गई तो क्या हुआ, आखिर हम नीरोग हैं, शक्तिशाली हैं, अभी क्या धर्म करें ? इन सबपर दृष्टिपात करते हुए हमें इन विचारोंपर तरस आता है। क्या धर्म इतनी छिछली वस्तु है—इतना बेकारीका काम है कि यह उस समय किया जाय जब कि मनुष्य सब कामोंके लिए अनुपयोगी हो जाय, अशक्त बन जाय ? नहीं, वस्तुत ऐसा नहीं है।

प्रथम भाग

सफल जीवन

मनुष्य एक कदम रखता है और दूसरेकी आशा ही नहीं। यह नहीं जानता कि क्षण भरके बाद क्या होनेको है ? जिस अवस्थामें वह इस क्षण गुजर रहा है, अगले क्षण वह रहेगी या नहीं ? वस्तुस्थिति जब यह है तब मानव का उक्त प्रकार से सोचना कि मैं अभी क्या धर्म करू—कितना भूल भरा है, भ्रान्ति मय है। वास्तविकता तो यह है कि इस जीवनरूपी अमूल्य वस्तु का क्षण क्षण सच्चा सदुपयोग एकमात्र धर्माचरण के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? इसलिये मानवको बचपन, जवानी या बुढापेसे निरपेक्ष रहते हुए सभी अवस्थाओं में धर्माचरण करना चाहिये यही जीवन की सच्ची सार्थकता है—सफलता है।

सत्सग और जीवन-विकास

जैसा कि पहले कहा गया—मनुष्य-जीवन मिला, पूर्ण विकसित इन्द्रियां मिलीं और स्वस्थ शरीर भी। इन सबके साथ-साथ सत्सगतिका प्राप्त होना तो सोने मे सुगन्ध है। सन्तोंका सग मनुष्यके आत्म उत्थान और जीवन-विकास का अमोघ साधन है, यदि मानव इसे अपनाये। सन्तोंके जीवनका आदर्श मानवको अपने जीवनकी विकासोन्मुखतामें एक निर्देशनका काम देता है। इसलिये मनुष्यों को साधु सगतिसे अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिये। मानव-जीवन की तरह साधु सगति भी अपने सद्भाग्य का परिणाम है।

अमूल्य हीरेको कौड़ीके मोल मत गंवाओ

सवा लाखके हीरेको यदि कोई पैसेके लिये खो देता है, तो सब लोग उसे बेवकूफ बतलाते हैं मगर ताज्जुबकी बात है कि जीवनको जो सवा लाखका ही नहीं अपितु एक अमूल्य हीरा है, तुच्छ भोग विलासमें, नश्वर सुखोंमें खोते हुए मनुष्य यह सोचते तक नहीं कि वे एक अमूल्य हीरेको कौड़ीके मोल खो रहे हैं। बुद्धिमान कहे जानेवालोंके लिये क्या यह शोभनीय है ? मेरा तो यही कहना है कि मानव-जीवनके अमूल्य हीरेको कौड़ियोंके मोल मत गवाओ, इसकी कीमत आंको और इसका सच्चा उपयोग करो।

: ३१ :

मैत्री-मन्त्र

बढे प्रेम से मिल-जुल सीखें, मैत्री-मत्र महान् रे।
औरों से ल क्षमा, स्वय औरों को कर प्रदान रे॥ बढे०॥

व्यक्ति व्यक्ति में, जाति-जाति में, वैमनस्य जो बढता,
प्रान्त-प्रान्त मे, राष्ट्र-राष्ट्र मे, अन्तर जाता पड़ता।
यह भारी, विश्वशान्ति को खतरा, हो इसका अवसान रे॥
औरों को करें प्रदान रे॥

औरों की भूलों को भूलें, अपनी भूल सुधारें,
कभी न करता मैं गल्ती, इस अह वृत्ति को मारें।
खुद झुकें, झुकाए दुनिया को, यह सरल मनोविज्ञान रे॥
औरों को कर प्रदान रे॥

अपनी भूल जान लेने पर भी जो अकड़े रहते,
लातें खाने पर भी, पूँछ गधे की पकड़े रहते।
इस अकड़ पकड़ को छोड, बढ़ाए, मानवता का मान रे॥
औरों को करें प्रदान रे॥

छोटी सी भी बात डाल देती है बड़ी दरारें,
गलत-फहमियों से खिंच जातीं, आंगन में दीवारें।
इनका हो समुचित समाधान, तो मिट जाए व्यवधान रे॥
औरों को करें प्रदान रे॥

कटुता मिटे परस्पर वैसा, वातावरण बनाए,
बढ़े सजनता 'तुलसी' ऐसे मैत्री दिवस मनाए।
हो निश्चल, निरभिमान मानव मन, यह अणुव्रत अभियान रे॥
औरों को करें प्रदान रे॥

प्रश्न

१—मैत्री-मन्त्र से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

२—औरों से लें क्षमा स्वयं औरों को करें प्रदान रे—का भावार्थ बताओ।

३—निम्न शब्दों के अर्थ बताओ —
वैमनस्य, अवसान, गलत-फहमियां, समुचित।

: ३२ :

मरुदेवी माता

भगवान् श्रीऋषभदेव की माता का नाम मरुदेवी था। मरुदेवी माता परम सौभाग्यशालिनी थी। भगवान् के रूप में पुत्र प्राप्त करने का सौभाग्य तो मिला ही था पर साथ ही साथ मनुष्य की आयु में सबसे अधिक आयु एक करोड़ पूर्व की प्राप्त करके भी अपनी सारी उम्र में कभी भी किसी का किसी प्रकार का भी किंचित दुःख उन्होंने नहीं देखा। लाखों की संख्या में परिवार के होते हुए भी माता ने किसी का विरह शोक देखना तो दूर, किसी की आधि-व्याधि भी नहीं देखी थी।

भगवान् घर त्याग कर साधु बनकर चले गये। लगभग एक हजार वर्ष कठोर साधना करने के बाद भगवान्‌को केवल-

ज्ञान प्राप्त हुआ। वे विनीता नगरी में पधारे। इधर माताने इतने वर्षों तक कभी भी पुत्र को याद नहीं किया। उनका हृदय बड़ा ही सरल था। आज एकाएक अपने आप ही भगवान याद आ गये। उन्हें चिन्ता हुई। विचार किया कि ऋषभ अकेला ही गया है। उसे अनेकों कष्ट पड़ने होंगे। वह कहाँ भोजन करता है, कौन उसकी देख भाल करता है, उसके साथ में कौन हैं ? इस तरह से माता बड़ी आकुल-व्याकुल हो रही थी।

उसी समय भगवान् ऋषभदेव के सबसे बड़े पुत्र भरतजी ने मरुदेवी माता के पास जाकर खबर दी कि भगवान् अपने बाग में पधारे हैं। माता बड़ी प्रसन्न हुई। उनका हृदय बाँसों उछलने लगा। माताजी हाथी पर सवार होकर भरतजी और उनके सेना लवाजमें के साथ भगवान् के दर्शन करने के लिये आई। ज्योंही माताजी को दूर से भगवान् दिखाई दिये, एकाएक उनकी विचारधारा बदल गई। जो माता मोह वश हो रही थी, उसे अब सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ। विचार किया मैं किसके लिये मोह विलापात कर रही हूँ ? ये तो त्रिलोकी के नाथ हैं। इनके समान आज संसार में कौन हो सकता है ? तिर्यञ्च, मनुष्य, देवता सब इनकी पर्युपासना (सेवा) करते हैं। ये स्वयं अपना कल्याण करते हैं और दूसरों का भी कल्याण करते हैं। ये किसी का मोह नहीं करते तो मैं फिर क्यों मोह में फँसी हुई हूँ। इसी प्रकार उच्च भावना में तल्लीन हो, हाथी

पर बैठे ही बैठे माताजी ने ससार के सारे बन्धनों को तोड दिया, मोह छोड दिया और केवल-ज्ञान प्राप्त करके अपना कल्याण किया।

इस अवसर्पिणी काल मे इस भरत क्षेत्र से सबसे पहले माता मरुदेवी ने ही मुक्ति प्राप्त की थी।

प्रश्न

१—मनुष्य की ज्यादा से ज्यादा कितनी आयु होती है ?

२—भगवान ने कितने वर्षों की साधना के बाद केवल-ज्ञान प्राप्त किया ?

३—मरुदेवी माता को किस अवस्था म ज्ञान प्राप्त हुआ ?

४—मरुदेव माता को साधुपन आया या नहीं ?

समाप्त